* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल वंचनकर ।

वर्ष ११ | गौराब्द ४७९, मास—श्रीधर ३, वार—गर्भोदशायी शुक्रवार, ३१ आषाढ़, सम्वत् २०२२, १६ जुलाई, १९६५ | संख्या २

श्रीश्रीकुंजविहारी द्वितीयाष्टकम्

[श्रीश्रीमद् रूप-गोस्वामि-विरचितम्]

नमः श्रीकुंजविहारिणे

अविरत-रति-बन्धु-स्मेरता-बन्धुर-श्रीः, कवलित इव राधापाङ्ग-भङ्गी-तरङ्गैः ।
मुदित-वदन-चन्द्रश्चन्द्रकापीड़-धारी, मुदिर-मधुर-कान्तिर्भाति कुंजे-विहारी ॥१॥

तत शुषिर-घनानां राग-मानद्ध-भाजां, जनयति तरुणीनां मण्डले मण्डितानां ।
तट भुवि नटराज-क्रीड़या भानु-पुत्र्या, विदधदतुलचारीर्भाति कुंजे-विहारी ॥२॥

शिखिनि कलित-षड्जे कोकिले पञ्चमाख्ये, स्वयमपि नव वंश्योद्दामयन् ग्राम-मुख्यं ।
धृत-मृग-मद-गन्धः सुष्ठु गान्धार-संज्ञं, त्रिभुवन-धृतिहारी भाति कुंजेविहारी ॥३॥

अनुपम-कर-शाखोपात्त-राधाङ्गुलीको, लघु-लघु कुसुमानां पर्यटन वाटिकायां ।
सरभसमनुगीतश्चित्र-कण्ठीभिरुच्चैः, व्रज-नव-युवतीभिर्भाति कुंजे-विहारी ॥४॥

अहिरिपु-कृत-लास्ये कीचकारब्ध-वाद्ये, व्रजगिरि-तटरङ्गे भृङ्ग-संगीत-भाजि ।
विरचित-परिचर्याश्चित्र-तौर्यत्रिकेण, स्तिमित-करण-वृत्तिर्भाति कुंजे-विहारी ॥५॥

दिशि-दिशि शुक-शारी मण्डलैर्मूढ-लीलाः, प्रकटमनुपठद्भिर्निर्मिताश्चर्य-पुरः ।
तदतिरहसि वृत्तं प्रेयसी कर्णमूले, स्मित-मुखमभिजल्पन् भाति कुंजे-विहारी ॥६॥

तव चिकुर-कदम्बं स्तम्भते प्रेक्ष्य केकी, नयन कमल-लक्ष्मीर्बन्दते कृष्णसारः ।
अलिरलमल-कान्तं नौति पश्यति राधां, सुमधुरमनुशंसन् भाति कुंजे-विहारी ॥७॥

मदन-तरल-बाला-चक्रवालेन विश्व-,ग्विविध वरकलानां शिक्षया सेव्यमानः ।
स्खलित-चिकुर-वेशे स्कन्धदेशे प्रियायाः, प्रथित-पृथुल-बाहुर्भाति कुंजे-विहारी ॥८॥

इदमनुपम लीला-हारि कुंजे-विहारी, स्मरण-पदमधीते तुष्टधीरष्टकं यः ।
निजगण-वृतया श्रीराधया राधितस्तं, नयति निजपदाब्जं कुंज-सद्माधिराजः ॥९॥

अनुवाद

कन्दर्प-विलासहेतु जिनके मुखमण्डल पर सर्वदा हास्य खेलता रहता है, जो श्रीमती राधिकाकी कटाक्ष-भङ्गी रूप तरङ्गोंद्वारा कवलित हो रहे हैं, जिनका मुखचन्द्र सदैव प्रसन्न रहता है, जिन्होंने सिर पर मोरपंख धारण कर रखा है, तथा जिन्होंने नवीन मेघकी भाँति मधुरकान्ति धारण कर रखी है, वे श्रीकुञ्ज बिहारी कुञ्जमें विराजमान हैं ॥१॥

यमुनाके तटपर जब नाना प्रकारके अलंकारों से अलंकृत होकर गोपाङ्गनायें मृदङ्ग, वीणा, वेणु और कांस्य आदि वाद्ययंत्रोंको बजाना प्रारम्भ करती है, तब जो उत्तम नटकी भाँति सुन्दर नृत्य करने लगते हैं, वे श्रीकुञ्जबिहारी कुञ्जमें विराजमान हो रहे हैं ॥२॥

जिस समय मयूरगण षड्ज स्वर आरम्भ कर देते हैं और जिस समय कोयलें पञ्चम स्वरसे आलापने लगती हैं, उस समय जो अपने सब अङ्गोंमें मृग-मदगन्ध धारण कर अभिनव वंशीमें गन्धार नामक उत्कृष्ट स्वरकी मूर्च्छना आदिसे युक्त तान छेड़ कर त्रिभुवनका धैर्य हरण कर लेते हैं, वे श्रीकुञ्जबिहारी कुञ्जमें विराजमान हो रहे हैं ॥३॥

जो अपने बाँये हाथकी अत्यन्त सुकोमल अँगुलियोंसे श्रीमती राधिकाके दाहिने हाथको पकड़ कर पुष्पवाटिकामें मन्द-मन्दगतिसे परिभ्रमण कर रहे हैं और साथ ही साथ मधुर कण्ठोंवाली सुन्दर-सुन्दर व्रजरमणियाँ आनन्दपूर्वक जिनका गुणगान कर रही हैं, वे कुञ्जबिहारी श्रीकृष्ण कुञ्जमें विराजमान हो रहे हैं ॥४॥

श्रीगोवर्द्धन पर्वतके अधित्यकारूप रङ्गस्थलमें मयूरोंका नृत्य, छिद्रयुक्त बाँसोंका वाद्य और भ्रमरों का संगीत प्रारम्भ होने पर ऐसा प्रतीत होता है, मानो गोवर्द्धन पर्वत स्वयं नृत्य, गीत और वाद्य द्वारा श्रीकृष्णकी परिचर्या कर रहे हों; ऐसी परिचर्यासे जिनका अन्तःकरण या इन्द्रियाँ द्रवित हो जाती हैं, वे श्रीकुञ्जबिहारी श्रीकृष्ण कुञ्जमें विराजमान हो रहे हैं ॥५॥

जिस समय कुञ्जके चारों ओर शुक-शारिकाएँ श्रीकृष्णकी निर्जनमें की गयी गूढ़ लीलाओंको सुस्पष्टरूपसे पढ़ने लगती हैं, उस समय उसे श्रवण कर जो अतिशय विस्मित होकर उन शुक-शारिकाओं की उक्तियोंको प्रेयसी श्रीमती राधिकाजीके कानों में हँसते-हँसते व्यक्त करते हैं, वे कुञ्जबिहारी श्रीकृष्ण कुञ्जमें विराजमान हो रहे हैं ॥६॥

'हे राधिके ! देखो, तुम्हारे विविध प्रकारके पुष्पों से सुशोभित केश-पाशको देखकर मयूरोंका समूह स्तंभित हो रहा है (मानों वे मन-ही मन ऐसा सोच रहे हैं कि श्रीमतीजीका केश-पाश हमारे पंखोंसे भी अधिक सुन्दर हैं), कृष्ण-सार नामक मृग भी तुम्हारे नेत्र-कमलोंकी प्रशंसा कर रहे हैं तथा भ्रमरवृन्द तुम्हारी अलकावलीकी स्तुति कर रहे हैं'—जो इस प्रकारकी बातें श्रीराधिकाजीसे कहते हैं, वे श्रीकृष्ण कुञ्जमें विराजमान हो रहे हैं ॥७॥

जो पुष्प-माला-रचनादि शिल्पकार्य सीखनेके मिस स्मरविलास-चतुरा ललिता आदि सखियोंके द्वारा सेवित होते हैं तथा मुक्त केशवाली परम प्रेयसी श्रीराधिकाके कंधों पर जो अपने हस्तकमल रखे हुए हैं, वे कुञ्जबिहारी श्रीकृष्ण कुञ्जमें विराजमान हो रहे हैं ।

श्रीकृष्णके स्मरण-पद्धति स्वरूप इस पद्याष्टकके प्रत्येक पदमें कृष्णलीलाका प्रकाश रहनेके कारण यह अत्यन्त मनोहर है । जो इस पद्याष्टकका सन्तुष्ट-चित्तसे पाठ करते हैं, उनको श्रीराधिका और श्रीराधिकाकी सखियों द्वारा आराधित वे निकुञ्ज पति श्रीकृष्ण अपने श्रीचरणकमलोंमें स्थान प्रदान करते हैं ।

देश-सेवा

[जगद् गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वतीगोस्वामी "प्रभुपाद" और आसामके भूतपूर्व मुख्य मन्त्री श्री एन. बरदोलईके बीच वार्त्तालापके समय संग्रहीत]

बरदोलई—आजकल देशकी बड़ी दुरवस्था है । ऐसी दशामें आज धर्म-प्रचार करनेकी अपेक्षा देश की दुरवस्था दूर करना अधिक आवश्यक है ।

प्रभुपाद—धर्म कहनेसे आप क्या समझते हैं ?

बरदोलई—ध्यान-धारणा आदि साधनोंके द्वारा भगवानमें लीन हो जानेकी चेष्टा ही धर्म है ।

प्रभुपाद—आप जिसे धर्म समझते हैं, वैसे धर्म का प्रचार न होनेमें ही देशका परम कल्याण है । आप जिसे धर्म कहते हैं, वह तो वास्तवमें जीव-हिंसा है । इसलिये उसका प्रचार बंद होना ही श्रेयकर है । जीव नित्य अणुचिद् और स्वरूपतः नित्य कृष्ण-सेवक है । उसका निर्विशेष ब्रह्ममें लीन होना अपनी नित्य सत्ताको नष्ट कर आत्महत्या करना है । निर्वि-शेष धारणासे ही जगत्के कर्मी, भोगी और फल्गु-त्यागी सम्प्रदायोंकी सृष्टि हुई है । श्री चैतन्य महाप्रभु ने विश्वमें जिस परम धर्मका प्रचार किया है, उसी से जगत्के सभी लोगोंका सर्वतोभावेन उपकार और

परम कल्याण हो सकता है । श्री चैतन्यदेवने कहा है—

"भारत भूमिते हैल मनुष्य जन्म जार ।
जन्म सार्थक करि कर पर उपकार ॥

श्रीचैतन्य महाप्रभुने देशके उपकारकी बात ही कही है, परन्तु उनका "देश" और उनकी "जनता" तथाकथित समाज-कल्याणके ठीकेदारोंकी भाँति क्षुद्र, संकीर्ण परस्पर विद्यमान, मत्सरतापूर्ण, अस्थायी, परिवर्तनशील या आकाश कुसुम जैसा काल्पनिक नहीं है; उनके द्वारा कथित उपकार 'पर' अर्थात् श्रेष्ठ है अर्थात् वह निकृष्ट या अनित्य नहीं है मानव जातिने अपनी तुच्छ और सीमित विचार-बुद्धिसे परोपकार और देशकी उन्नतिके लिये भूतकालमें जिन असंख्य उपायोंका उद्भावन किया है, वर्त्तमान कालमें उद्भावन कर रही है तथा भविष्यकालमें जो करेगी, उससे देश और जनताका यथार्थ उपकार, यथार्थ उन्नति या परम-कल्याण कदापि नहीं हो सकता, वह तो केवल प्रस्तावित अनित्य उपकारका एक क्षुद्र प्रयास मात्र है । श्रीचैतन्य महाप्रभुने वास्तव परोपकारकी पद्धति इस प्रकार बतलायी है ।

"श्रेयः वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ।"

श्रीमद्भागवतकी परोपकार-प्रणाली ही यथार्थ परोपकारकी प्रणाली है । श्रीचैतन्य महाप्रभुने उस प्रणालीको बड़े ही सुन्दर और आकर्षक ढङ्गसे विश्व के सन्मुख प्रस्तुत किया है । वही प्रणाली शिवद अर्थात् कल्याण प्रदानकारी और त्रिविध तापोंको समूल ध्वंश करनेवाली है ।

जगत्के मनिषियोंने परोपकारकी जो सब प्रणालियाँ खोज बाहर की हैं, उनसे क्षणभंगुर उपकार या प्रयःकी ही प्राप्ति हो सकती है, वे शिवद या श्रेयः दानकारी नहीं हो सकती । उनके द्वारा त्रितापका मूल नहीं नष्ट किया जा सकता है । ताप किसी कारणका कार्य विशेष है; कारणका नाश हुए बिना कार्यका विनाश नहीं होता । वट वृक्षका मूल न उखाड़ कर उसकी टहनियों और पत्तोंको बार-बार काटने पर भी वह नष्ट नहीं होता, फिर से पनप उठता है । मनुष्य द्वारा परिकल्पित परोपकारकी लाखों परिकल्पनाएँ अंजली द्वारा जलको उलीच कर महासमुद्रको सुखानेकी व्यर्थ चेष्टाके समान है । एक क्या हजारों मनुष्य युग-युगान्तरपर्यन्त अंजली द्वारा जल उलीचनेके कार्यमें नियुक्त रहने पर भी महासमुद्र कभी नहीं सुख सकता; हाँ ऐसा करनेसे एक जगह कुछ अधिक परिमाणमें जल एकत्रित हो सकता है । उसी प्रकार मनुष्य द्वारा कल्पित उपाय रूपी अंजलि द्वारा त्रिताप रूप समुद्र कदापि सुखाया नहीं जा सकता है । तब इस कार्यके द्वारा नीरीह जनताको वंचित कर स्वयं भी वंचित रहा जा सकता है ।

श्रीमद्भागवतमें वर्णित प्रणालीको छोड़कर अन्य किसी भी उपाय द्वारा त्रितापको समूल नष्ट नहीं किया जा सकता है । इस त्रितापकी अगणित-विचित्रताएँ हैं । इन कल्पित उपायोंके द्वारा हम लोग अगणित तापोंमें से एकको भी समूल नष्ट नहीं कर सकते हैं । हम पहले ही कह आये हैं कि कारणका नाश किये बिना कार्यका नाश नहीं होता । इसलिये कार्यको नष्ट करनेके लिये कारणको नष्ट करना आवश्यक है । यहाँ त्रिताप कार्य है तथा

भगवत् विस्मृतिरूप आवरणात्मिका और विक्षेपात्मिका अविद्या ही कारण है। इस मूल कारणका नाश हुए बिना तापरूप कार्यका विनाश सम्भव नहीं है। भगवत्-सेवाके प्रचारके बिना भगवत्-विस्मृतिरूप अविद्या दूर नहीं होती। अतएव भगवत् सेवाके प्रचारके बिना देशका दुःख कदापि दूर नहीं किया जा सकता है। भगवत् सेवाका प्रचार होनेसे सम्पूर्ण देशकी सारी जनताका सार्वकालिक कल्याण होगा।

भगवान पूर्ण-विलासमय वस्तु हैं। वे निर्विशेष, निराकार या जड़ीय-आकार विशिष्ट नहीं है। जीव की प्राकृत इन्द्रियोंसे वे सर्वथा परे हैं। जो हमारी इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण किया जा सकता है वह "तुरीय" नहीं है; वह सब तृतीय मानकी वस्तुएँ हैं। हम लोग तृतीय मान (लम्बाई × चौड़ाई मोटाई या ऊँचाई) से परे किसी भी वस्तुकी हम धारणा नहीं कर सकते। इसलिये निर्विकार निर्विशेषकी कल्पना या अनुमानके द्वारा परब्रह्मको जड़ीय भूमिकामें खींच लानेकी चेष्टा भी अधोक्षज वस्तु को इन्द्रियोंके अधीन एक क्षुद्र वस्तुके रूपमें नापने-तौलनेकी चेष्टाके समान है। जिसे मापा=नापा जायवह माया है—"मीयते अनया इति माया"—"मा या माया" जो स्वरूप शक्ति नहीं है, वह माया है। स्वरूप शक्ति भगवानका अन्तरंग विक्रम है। भगवानके बहिरंग विक्रमसे मुग्ध होकर जो कुछ धारणा की जाती है, उसे भूमा, विराट, निर्विकार, निर्विशेष आदि जो कुछ भी क्यों न कल्पित किया जाय, वह सब कुछ मायिक पुत्तल-पूजा ही है।

बरदलोई— भगवान नामक कोई वस्तु है भी या नहीं, जब इसी बातकी निश्चयता नहीं, तब भगवत्सेवा-प्रचारसे क्या कल्याण हो सकता है ?

प्रभुपाद—जो लोग अपनेको जगतमें कर्मवीर ज्ञानवीर, योगवीर अथवा इनका अनुगत बतलाते हैं, उन सबके हृदयमें निश्चित रूपमें गुप्तरूप में अथवा स्पष्टरूपमें आपके द्वारा व्यक्त चिन्ताका back-ground है। जगत्को भोग करने या जगत को त्याग करनेकी चेष्टासे ही कर्म-वीरत्व और ज्ञान-वीरत्वकी उत्पत्ति हुई है और कर्मवीरगण पूर्ण चिद्विलासमय निरंकुश भगवानकी देखादेखी उन्हींका एक-एक क्षुद्र द्वितीय संस्करण बननेकी चेष्टा करते हैं। इसीलिये वे भगवानका अस्तित्व भी अस्वीकार करनेमें प्रवृत्त हो पड़ते हैं। हिरण्य अर्थात् कनक और कशिपु अर्थात् उत्तम बिछौना या कामिनी—इन दोनोंकी कामना करनेवाले व्यक्ति या तो सारी सत्ताओंके मूल आकर सत्वनिधि विष्णु को ही अस्वीकार करते हैं अथवा ज्ञानवीरके अभिमानसे निखिल आकारोंके मूल आकर-स्वरूप विष्णु को हाथ-पैर आदि इन्द्रियोंसे रहित कोई भोग्य वस्तु समझनेकी दुर्बुद्धि करते हैं। जिस समय सच्चिदानन्द स्वराट, अप्राकृत-सविशेष-विग्रह विष्णुके सेवक—वैष्णवगण अधोक्षज विष्णुकी लीला-कथाओंका प्रचार करते हैं, तब वे कर्मवीर और ज्ञानवीर हिरण्यकशिपुको अपना आदर्श मानकर भीषण बाधाएँ उपस्थित करते हैं। वे कहते हैं—हे विष्णु धर्मका प्रचार करनेवालो। तुम लोग मेरे अधीन और मुझसे सर्वप्रकारसे हीन हो। तुम्हें तनिक भी बुद्धि नहीं है। हमलोग सर्व प्रकारसे तुम्हारा दमन करेंगे। हम तुम्हारी स्वाभाविकी रति

के मूल वस्तुको अस्वीकार करके तुम्हें अचल कर देंगे। तुम लोग षण्डामर्क की आज्ञाका विरोध कर झूठ-मूठ विष्णुकी कल्पना क्यों करते हो ? तुम लोग जब तक हमारे राजदरबारके स्तंभके भीतर विष्णु को साक्षात रूपमें न दिखला सकोगे तब तक हम विष्णुकी सत्ता कदापि स्वीकार नहीं कर सकते।"

इस प्रकार जब मनुष्यकी दुर्बुद्धि अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है तब अखिल सत्ताओं के मूल आकर विष्णु-भगवान अपने सेवकोंका यथार्थ आनन्दवर्द्धन करनेके लिये उनके निकट परम प्रेममय विग्रहमें प्रकटित होते हैं तथा विष्णु विरोधियोंके प्रत्यक्ष ज्ञानकी असारता दिखलानेके लिये उनके निकट भयंकरसे भयंकर उग्र मूर्ति प्रकाशित करते हैं। मूल आकर सत्ता विष्णुका अस्तित्व और उनकी अविचिन्त्य-निरंकुश स्वतंत्रेच्छाको अस्वीकार करनेवाले कर्मी और ज्ञानी जगत्का दुःख दूर करनेके लिये उग्र तपस्या करते हैं। कर्मवीरगण शौक्र-पथसे अपना अस्तित्व रखते हैं तथा ब्रह्माजी को वरदाता समझकर बड़ी उग्र तपस्यासे उनसे अपनी कामनाओंका दोहन करते हैं। इन कर्मवीरों का मूल आदर्श है—हिरण्यकशिपु। हिरण्यकशिपु जागतिक भोगोंको भोगनेके लिये कठोर तपस्याके द्वारा स्वराज्य, ब्रह्माधिपत्य आदिको प्राप्त करना चाहता था। उसने प्रत्यक्ष अभिज्ञानके लिये तथा अपनी प्रखर बुद्धिद्वारा मृत्युके जितने भी कारण सोचे जा सकते थे, उन सारे कारणोंको दूर करने के लिये ब्रह्माजीसे वह माँगा था—

भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्मा भून्मम प्रभो।
नान्तर्बहिर्दिवा नक्तमन्यस्मादपि वायुषः॥
न भूमौ नाम्बरे मृत्युर्न नरैर्न मृगैरपि।
न्यसुभिर्वासुमद्भिर्वा सुरासुरमहोरगैः॥
अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे ऐकपत्यञ्च देहिनाम्।
सर्वेषां लोकपालानां महिमानं यथाऽऽत्मनः॥
तपोयोग प्रभावाणां यन्न रिष्यति कर्हिचित्।
(भागवत ७।३।३५-३८)

प्रभो ! आपके बनाये हुए किसी भी प्राणीसे—चाहे वह मनुष्य हो या पशु, प्राणी हो या अप्राणी, देवता हो या दानव अथवा नागादि किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो। भीतर-बाहर, दिनमें रात्रिमें आपके बनाये प्राणियोंके अतिरिक्त और भी किसी जीवसे अस्त्र-शस्त्रसे, पृथ्वी या आकाशमें—कहीं भी मेरी मृत्यु न हो। युद्धमें कोई मेरा सामना न कर सके। मैं समस्त प्राणियोंका एकछत्र सम्राट होऊँ। इन्द्रादि समस्त लोकपालोंमें जैसी आपकी महिमा है, वैसी ही मेरी भी हो। तपस्वियों और योगियोंको जो अणिमादि अक्षय ऐश्वर्य प्राप्त है, वही मुझे भी दीजिये।

परन्तु विष्णुने अपनी अविचिन्त्य-शक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता और स्वतंत्रेच्छाका प्रचार करनेके लिये कर्मवीर और ज्ञानवीरोंके आदर्श स्थानीय हिरण्यकशिपुके सामने अपना अप्राकृत अचिन्त्य सविशेष श्रीविग्रह प्रकट किया। हिरण्यकशिपुको इसकी कल्पना तक नहीं थी। उसके विचार से निर्विशेष निराकार विष्णुका कोई आकार या रूप ही नहीं तब वह सामने कैसे आ सकता है और उनसे भला मृत्युकी सम्भावना भी कैसे हो सकती है। उसने सोचा था कि ब्रह्मा द्वारा सृष्ट प्राणियोंसे

ही मृत्यु सम्भव है और वह मृत्यु पृथ्वीके किसी भाग या स्थानमें, आकाशमें तथा किसी कालके अन्तर्गत ही सम्भव है । परन्तु विष्णुने हिरण्यकशिपु जैसे आदर्श कर्मवीर और राजनीतिज्ञकी तीक्ष्णसे-तीक्ष्ण बुद्धि और मनीषाकी सीमाको पार कर-तृतीय मानके समस्त विचारोंको अतिक्रम करके—जीवद्वारा कल्पित सर्व प्रकारके सम्भव और असम्भवको तुच्छ दिखलाकर वहाँ पर अपनी अचिन्त्य शक्तिका प्रभाव प्रदर्शन किया । नृसिंह देवने नास्तिकोंकी चित्तवृत्ति को जड़से उखाड़ कर फेंक दिया । उन्होंने यह जगद-वासियोंको यह बतला दिया कि नरत्व या पशुत्व विष्णुत्व नहीं है । विष्णुत्व एक अचिन्त्य व्यापार है । ब्रह्मासे लेकर उनके रचित विभिन्न योनियोंको धारण करनेवाले जीव तक कोई भी इन्द्रियज-ज्ञानके सहारे विष्णुत्वको जान नहीं सकता है । विष्णु अधोक्षज तत्त्व हैं । इन्द्रिय-ग्राह्य ज्ञानसमूह जिसे स्पर्श तक नहीं कर सकते उसे अधोक्षज तत्त्व कहते हैं । नृसिंहदेवने खंभेसे आविर्भूत होकर यह दिखला दिया कि—"विष्णु पूर्ण वस्तु हैं और वे परमाणुके भीतर भी अपने अप्राकृत और अपरिमेय रूप-गुण-लीला-धाम और परिकर वैशिष्ट्यको पूर्ण रूपसे संरक्षण कर विराजमान रह सकते हैं—जिसकी आध्यक्षिक मानव ज्ञान से धारणा करना भी असम्भव है । इसके अतिरिक्त वे परमाणुके बाहर भी पूर्णरूपसे विराजमान रह सकते हैं ।

बरदोलई—विष्णुकी सेवा करनेसे हमारी, हमारे देशकी या विश्वकी किस प्रकार सेवा हो सकती है ?

प्रभुपाद—विष्णु व्यापक वस्तु हैं, वे परब्रह्म अर्थात् सबसे बड़े हैं । समग्र विश्व उनसे उत्पन्न और उन्हींमें स्थित है । उनकी सेवासे उनके भीतरमें स्थित निखिल विश्वकी सेवा हो जायगी । एक विशेष घोड़ेका सेवक संसारके सभी घोड़ोंका सेवक नहीं है अथवा वह दूसरे प्राणियोंका भी सेवक नहीं है । किसी विशेष देशका सेवक संसारके सभी देशों का सेवक नहीं है । किसी विशेष कालका सेवक सभी कालोंका सेवक नहीं है । यदि कोई मुर्गी, बकरी या मछलीको मारकर उसके मांससे अपनी लम्पट रसनाकी सेवा करता है, तो उससे एकतरफा सेवा या प्रीति होती है—उससे मुर्गी, बकरी या मछली का सुख या आनन्द नहीं होता । किसी मनुष्य या किसी विशेष देशकी सेवा करनेसे दूसरे मनुष्य या दूसरे देश पीड़ित होते हैं । परन्तु विष्णुकी सेवा करनेसे समग्र वस्तुकी—समग्र विश्वके प्रत्येक प्राणी की सेवा हो जाती है । श्रीचैतन्य महाप्रभुकी दया—अमन्योदया दया है, सार्वजनीन दया है; उससे सभी देशों, सभी कालों और सभी जीवोंका कल्याण होगा ।

—जगद्गुरु श्रील प्रभुपाद

———

प्रश्नोत्तर

श्रीकृष्णतत्त्व

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ११, संख्या १, पृष्ठ १० से आगे]

(२४) देवकीके छः पुत्र और सप्तमपुत्र बलदेव कौन तत्त्व हैं ? देवकीनन्दनको कंसके डरसे व्रजमें लानेका क्या रहस्य है ?

"उस दम्पतीके यशः, कीर्त्ति आदि छः पुत्र क्रमशः पैदा हुए। परन्तु ईश-विरोधी कंसने उनको एक-एक करके बाल्यकालमें ही मार डाला। भगवद्-हास्य भूषित विशुद्ध जीव-तत्त्व बलदेव उनके सप्तम पुत्र हैं। ज्ञानाश्रयमय चित्तरूप देवकीमें शुद्ध जीव-तत्त्वका प्रथमोदय है; परन्तु मामा कंसके उपद्रवकी आशंकासे वह तत्त्व व्रज-मन्दिरमें चला गया। वह विश्वासमय धाम—व्रजपुरीमें उपस्थित होकर श्रद्धामय चित्त—रोहिणी देवीके गर्भमें प्रविष्ट हो गया।" (कृष्ण-संहिता ४।५-८)

(२४) क्या कृष्णलीला किसी नर-चरित्र पर आधारित कोई कल्पना मात्र है ?

"श्रीव्यासादि सारग्राही महर्षिगण भूत भविष्य और वर्तमानके ज्ञाता हैं। उन्होंने समाधियोगसे अपने विशुद्ध अन्तःकरणमें निर्मल श्रीकृष्ण-चरित्रका साक्षात्कार किया है। श्रीकृष्णलीला जड़ाश्रित मानव-चरित्रकी भाँति ऐतिहासिक नहीं है अर्थात् किसी देश या किसी कालमें परिच्छेद्यरूपमें वह लक्षित नहीं होती अथवा वह नर-चरित्र पर आधारित कोई काल्पनिक कहानी नहीं है।" (कृ. सं. ३।१६)

(२६) कृष्णकी प्रत्येक लीला नित्य कैसे है ?

"अधिकारके भेदसे किसी भक्तके हृदयमें इसी समय कृष्णका जन्म हो रहा है, किसी भक्तके हृदयमें वस्त्रहरण-लीला हो रही है, किसीके हृदयमें महारास लीला चल रही है, किसीके हृदयमें पूतना-बध हो रहा है, किसीके हृदयमें कंसका बध हो रहा है। किसीके हृदयमें कुब्जा-प्रणय लीला और किसीके हृदयमें अन्य लीला हो रही है। जिस प्रकार जीव अनन्त हैं, उसी प्रकार जगत भी अनन्त हैं। किसी एक जगतमें एक लीला हो रही है, तो दूसरे जगतमें दूसरी लीला हो रही है। इस प्रकार समस्त कृष्ण-लीलाएँ किसी-न-किसी जगत्में चल रही हैं। इसलिए सभी लीलाएँ नित्य हैं। लीला कभी बन्द या स्थगित नहीं होती, क्योंकि भगवानकी शक्ति सदैव क्रियावती रहती है। (कृ. सं. ७।१)

(२७) वस्त्र-हरण लीलाका रहस्य क्या है ?

"जिन लोगोंमें कृष्णकी सेवा करनेकी इच्छा अत्यन्त बलवती होती है, उनका स्वगत या परगत कुछ भी गोपनीय नहीं होता। भक्तोंको यही शिक्षा देनेके लिये ही कृष्णने गोपियोंके वस्त्र-हरण किये हैं। (कृ. सं. ५।३-४)

(२८) क्या रास-लीला अश्लील नहीं है ?

"चिद्गत महारास लीलामें कृष्ण ही एकमात्र

पुरुष हैं और समस्त जीव नारी हैं। इसका मूल तत्त्व यह है कि भगवान श्रीकृष्णचन्द्र चिज्जगतके सूर्य हैं। वे ही एकमात्र भोक्ता हैं। समस्त अणु चैतन्य ही भोग्य हैं। समस्त चित्स्वरूपोंका प्रीति-सूत्रमें बन्धन सिद्ध है। वहाँ भोक्ता तत्त्वका पुरुषत्व और भोग्यतत्त्वका स्त्रीत्व सिद्ध है। जड़शरीरगत स्त्री-पुरुषत्व—चिद्जगतके भोग्य-भोक्ता तत्त्वका ही असत् प्रतिफलन है। सम्पूर्ण अभिधानको खोजने पर एक भी ऐसा वाक्य नहीं मिलेगा, जिसके द्वारा चित्स्वरूपोंकी परम चैतन्यके साथ अप्राकृत संभोग-लीलाका सम्यक वर्णन हो सके। इसलिये मायिक स्त्री-पुरुषके संभोग सम्बन्धी सभी वाक्य उनके विषयमें सर्व-प्रकारसे सम्यक व्यंजक स्वरूप व्यवहृत हैं। इसमें अश्लील चिन्ताकी कोई आवश्यकता या आशंका नहीं।" (कृ. सं. २।१३)

(२९) उग्रसेन, कंस, कंसकी स्त्री और जरासंध —ये कौन-कौन तत्त्व हैं?

"नास्तिक्यरूप कंसकी मृत्यु होने पर उसके पिता स्वातंत्र्यरूप उग्रसेनको श्रीकृष्णने राज्य सिंहासन सौंप दिया। कंसकी अस्ति और प्राप्ति नामक दो पत्नियाँ थीं जिन्होंने कंसके मरनेपर कर्मकाण्ड स्वरूप जरासन्धके निकट अपनी-अपनी विधवा होनेकी बात बतलायी थी।" (कृ. सं. ५।२५-२६)

(३०) क्या कृष्ण-लीला मनुष्य द्वारा कल्पित व्यापार नहीं है?

"कृष्णलीला किसी मनुष्यकी कल्पनाका विषय नहीं है अथवा वह मूर्ख लोगोंके अन्ध-विश्वासका व्यापार नहीं है। उसे तो केवल परमार्थ तत्त्वके पूर्ण ज्ञाता ही जान सकते हैं। भक्तिशून्य तार्किक और नैतिकबुद्धि सम्पन्न व्यक्ति कृष्णलीलाकी महिमा-को स्पर्श भी नहीं कर सकते। तर्क, नीति, ज्ञान, योग और धर्माधर्मके विचार एक ओर अतिशय क्षुद्र रूपमें पड़े रह जाते हैं और दूसरी ओर व्रज-तत्त्वका महादीपक अप्राकृत-बुद्धिशाली व्यक्तियोंके हृदयमें देदीप्यमान होकर चिदालोक वितरण करता रहता है।" (श्रीम० शि० ५ प०)

(३१) कृष्णलीला आध्यात्मिक है या रूपक?

"हमलोग वृन्दावनीय श्रीराधाकृष्णकी लीलाको अप्राकृत समझते हैं, आध्यात्मिक नहीं। रूपक वर्णन द्वारा शुष्क अभेदवादको समझानेके लिये जो चेष्टा होती है, वह आध्यात्मिक है; इसका कारण यह है कि इसमें प्राकृत विचित्रताका अवलम्बन कर उसके निरसन द्वारा अद्वैतवादको समझाया जाता है। परन्तु व्रजलीलाका वर्णन वैसा नहीं है। प्राकृत-विचित्रताके आदर्श स्थानीय अप्राकृत चिन्मय विचित्रताकी स्थिति है। जिस वर्णनको पढ़कर अप्राकृत विचित्रताकी उपलब्धि होती है, उसे अप्राकृत वर्णन कहते हैं।"

('समालोचना' स. तो. ६।२)

(३२) कृष्णलीला आध्यात्मिक क्यों नहीं है?

कृष्णलीला आध्यात्मिकी नहीं है। जहाँ पर सभी तत्त्व एकमात्र ब्रह्मात्मामें पर्यवसित किये जाते हैं, वहीं पर आध्यात्मिक क्रियाका उदय होता है। माया-वाद आध्यात्मिक व्यापार है। आध्यात्मिक अर्थ और भावकी जहाँ प्रबलता होती है, वहाँ कृष्णलीला और चिन्मय वृन्दावनलीलाका निर्वाण हो जाता है अर्थात् वह छिप जाती है। कृष्णलीला विचित्र होती है।

आध्यात्मिकता विचित्रतारहित होती है। अतः आध्यात्मिक भाव और वैचित्र्य भाव परस्पर विपरीत हैं। आध्यात्मिक रूपमें वही परम-तत्त्व एक और अद्वितीय सुप्तशक्तिक ब्रह्म है। केवल विचित्रशक्ति-क्रियामें ही नित्य रूपमें कृष्णलीलाका उदय होता है। ये दोनों भाव परस्पर विरुद्ध होनेपर भी परमतत्त्वमें परस्पर विरोध नहीं करते। अतएव ज्ञानमार्गमें आध्यात्मिक भावसे जब 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' उदित रहते हैं, उसी समय विचित्र शक्तिसम्पन्न परमतत्त्व नित्यधाम वृन्दावनमें कृष्णलीला प्रकाशित करते रहते हैं। मानव-विचारसे इस प्रकार आध्यात्मिक और अप्राकृत-तत्त्व एक साथ एकत्र नहीं पाये जा सकते हैं। परन्तु परमतत्त्वकी जिस पर कृपा होती है, वही सौभाग्यवान व्यक्ति इस विरोधाभासका सामञ्जस्य कर सकता है। अचिन्त्यशक्तिके द्वारा ही यह युगपत भेदाभेद सिद्ध है।"

—'समालोचना' स. तो. ८.७

(३३) क्या कृष्णलीला कोई पांचभौतिक व्यापार है?

"अप्राकृत-लीलामें जिन-जिन व्यापारोंका वर्णन हुआ है, वे सभी नित्यसत्य हैं, वे कदापि रूपक भावसे कल्पित नहीं हैं। जड़ीय इतिहास और अप्राकृत लीलामें भेद यह है कि जड़ीय इतिहास सम्पूर्ण भौतिक और देश-कालके अधीन होता है; अतएव वह अनित्य होता है। अप्राकृत-लीला जड़ीय व्यापार जैसी प्रतीत होने पर भी उसमें भौतिकताका लेश भी नहीं है। वह सम्पूर्ण रूपसे चिन्मयी होती है। कृष्णकी कृपासे भौतिक नेत्रोंसे दिखलायी पड़ सकती है, इसी कारण उसका कोई भी अंश पांच-भौतिक जगतका व्यापार नहीं है। कृष्णलीला प्रकृतिसे परे है। वास्तवमें इन्द्रियातीत कहनेसे जड़ेन्द्रियोंसे परे ही समझना चाहिए। वह चिन्मय जीवके चिदिन्द्रियों द्वारा ही ग्रहणीय है।"

—'समालोचना', स. सङ्गिनी स. तो. ८।७

(३४) कृष्णलीला निर्गुण कैसे है? कृष्णलीला-के उपकरण क्या हैं?

"यह जगत चिज्जगतका प्रतिफलित तत्त्व है। यहाँका सबकुछ मायाद्वारा कलुषित है। चिज्जगतमें माया और तदीय त्रिगुणका अभाव रहनेके कारण वहाँ सब कुछ अनवद्य (निर्दोष) और शुद्धसत्त्वमय है। काल और देश भी उसी प्रकार हैं। कृष्णलीला मायातीत है—त्रिगुणातीत है; अतएव निर्गुण है। उसी लीलाकी रसपुष्टि करनेके लिये निर्दोष काल, निर्दोष देश तथा निर्दोष आकाश और जलादि कृष्णलीलाके उपकरण हैं। इसलिये चिन्मयकालमें (जिसमें जड़ीय कालका प्रभाव नहीं है) श्रीकृष्णलीला अष्टकालीय है अर्थात् वह दिन-रातमें निशान्त काल, प्रातःकाल, पूर्वाह्णकाल, मध्याह्न काल, अपराह्न काल, सायंकाल, प्रदोषकाल और रात्रिकाल—इन आठ कालोंमें विभक्त होकर अखण्ड रसकी पुष्टि करती है।"

—चै. शि. ६।५

(३५) प्रकट-व्रजलीला कितने प्रकार की है?

"प्रकट व्रजलीला नित्य और नैमित्तिक भेदसे दो प्रकारकी है। व्रजकी अष्टकालीय लीला नित्य-लीला है और पूतना-बध तथा दूर-प्रवास आदि (व्रजसे बाहर अन्यत्र स्थिति) नैमित्तिक लीलाएँ हैं।"

(जै. ध. ३८ अध्याय)

(३६) असुर-मारणादि लीलाओंसे क्या शिक्षा मिलती है ?

"असुर-मारणादि लीलाओंके द्वारा व्यतिरेक रूपमें कृष्ण तत्त्व जाना जाता है।

—चै. शि. खण्ड २, ७।७

(३७) भगवान साकार हैं या निराकार ?

वे अपनी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे एक साथ निराकार और चिन्साकार दोनों हैं। वे चिन्साकार नहीं हो सकते—ऐसा कहनेसे उनकी अचिन्त्य शक्तिको अस्वीकार करना होता है।"

—जै. ध. ११ अध्याय

(३८) वेद परमेश्वरको निराकार क्यों कहते हैं ?

"जड़ पदार्थोंका जिस प्रकार एक स्थूल आकार होता है, ईश्वरका उस प्रकार कोई प्राकृत स्थूल आकार नहीं होता। इसीलिये हम उनको अपनी प्राकृत इन्द्रियोंके द्वारा देख या अनुभव नहीं कर पाते। इसलिये वेदमें कहीं-कहीं उनको निराकार (?) कहा गया है।"

—चै. शि. १।१

(३९) परमेश्वरके साकार या निराकार होनेका विचार किस दृष्टिकोणसे करना उचित है ?

"वास्तवमें परमेश्वर चिन्साकार और निराकार दोनों है। जो लोग दोनोंमेंसे किसी एकके प्रति श्रद्धा करते है, परन्तु दूसरे स्वरूपको अस्वीकार करते हैं, वे दोनों आँखोंसे देखते नहीं हैं—ऐसा ही समझना होगा।"

—तत्त्वसूत्र ४ (क्रमशः)

—जगद्गुरु श्रील भक्तिविनोद ठाकुर।

पछतावा

हरि बिनु कोऊ काम न आयो।
इहिं माया झूठी प्रपंच लगि, रतन सौ जनम गँवायो॥
कंचन कलस, बिचित्र चित्र करि, रचि पचि भवन बनायो।
तामैं तै ततछन ही काढ्यो, पल भर रहन न पायो॥
हौं तव संग जरौगी, यौ कहि, तिया धूति धन खायो।
चलत रही चित्त चोरि, मोरि मुख, एक न परा पहुँचायो॥
बोलि-बोलि सुत स्वजन मित्रजन, लीन्यौ सुजस सुहायो।
पर्यो जु काज अन्त की बिरियाँ, तिनहुँ न आनि छुड़ायो॥
आसा करि-करि जननी जायो, कोटिक लाड़ लड़ायो।
तोरि लयौ कटिहू को डोरा, तापर बदन जरायो॥
पतित उधारन, गनिका तारन, सो मैं सठ बिसरायो।
लियौ न नाम कबहुँ धोखैं हूँ, सूरदास पछितायो॥

—सूरदास

श्रीमद्भागवतमें दास्यभाव

[वर्ष १० संख्या १०-११, पृष्ठ २३ से आगे]

जीवनका वास्तविक आनन्द इसीमें है कि वह संसारके कोलाहलपूर्ण वातावरणसे अपनेको हटाकर, मायाके गहरे पङ्कसे निकल कर दिन प्रति-दिनकी भयावनी विनाशकारिणी झंझटोंसे अपनेको दूरकर, हृदयकी कालिमाको धोकर, शौचका, सत्यका, बाना धारण कर, भक्तिकी धारामें बहता हुआ भाव गद्-गद् हो अशरण शरण दीन - प्रतिपालक, पतितोद्धारक, जीवनके हृदय-धन श्रीकृष्णके चरणोंमें अपनेको गिरा दे। प्रेमाश्रुओंसे अपने शरीरको भिगोता हुआ रोमाञ्चित हो मौन वाणीसे कहने लगे—मैं अब श्रीचरणोंकी शरण ले चुका हूँ। कितनी ही ठोकरें दो, कितने ही रूठो, आपके पावन चरणोंसे नहीं हटूँगा, नहीं हटूँगा; अब तुम जानो तुम्हारा काम जाने! ऐसे हठीले शरणागतदास किसी भी योनिके हो किसी भी प्रकारके शरीरके हों संसारके लिये पूजनीय हैं। उनकी चर्चाकर उनके गुणगान कर जिह्वा पवित्र होती है। उनके दर्शन कर नेत्र सफल होते हैं। कृतार्थ होते हैं।

विगत प्रबन्धमें हम शरणागत दासोंकी कथा-माधुरीका रसास्वादन कर उसीकी मस्तीमें झूम रहे थे। अपने जीवनके क्षणोंको पावन कर रहे थे। अब उसीके आगे अपने इस प्रबन्धकी कड़ी जोड़ दें और शरणागत दासोंका और गुण गान करें तो जीवनमें अमृत रसमाधुरीका, द्विगुण प्रवाह प्रवाहित होगा।

पर इस चर्चाके लिये आपको सारे कार्य छोड़ कर पावन व्रजभूमिमें चलना पड़ेगा जो प्यारे नट-खट रसिक-शिरोमणि, गोसंरक्षक, माखन-चोर व्रजेन्द्रनन्दनकी लीलाभूमि है। जहाँ कल-कल निनादिनी कलिन्द नन्दिनी श्यामाश्यामसे अपनी श्याम भुजा जोड़ रही है। जहाँ हरिदासवर्य गिरिराज अपने सुहावने शरीरसे शरणागतोंकी रक्षा की कहानी कह रहा है। जहाँके पशु पक्षी मौनहोकर राधाकृष्णके दर्शनोंका सौभाग्य लूट रहे हैं। जहाँके सुमधुर वृक्ष, हरी हरी विविध लताएँ अपने गोपालके युगल चरणोंमें सुमनावली चढ़ाकर अपनेको भाग्य शाली बना रही है। जहाँ की रज भक्तोंका शृङ्गार है।

वहाँकी ही कृष्णावतारके समयकी एक पुनीत कथा है। ऐतिहासिक दृष्टिसे यद्यपि कृष्ण-लीलाको बीते हजारों वर्ष हो गये हैं, फिर भी वैष्णवों और भक्तोंके लिये वह नित्य नवीन है। आज भी उन्हें उस लीलाका साक्षात दर्शन होता है। उन्हें इधर उधर दौड़ते, कूदते, खेलते, लीला करते, लीला निकेतन श्रीकृष्णके दर्शन होते हैं। वे उनसे बातें करते हैं, रूठते हैं, हास-परिहास करते हैं उनसे ही अपने उद्धारकी पुकार करते हैं। उनके ही एक शरणागत भक्तकी यहाँ हम चर्चा कर रहे हैं।

कालियनाग कृष्णावतारके समयका ही एक अभिमानी विषधर नाग था। वह रमणकद्वीप में रहता था। वहाँ भगवान्के वाहन गरुड़जी समय-

असमय अपनी इच्छाके अनुसार साँपोंको खा जाते थे। तब सर्पोंने मिलकर यह नियम कर लिया था कि प्रत्येक मासकी अमावस्याके दिन निर्दिष्ट वृक्षके नीचे क्रम-क्रमसे गरुड़को बलि दी जाय। सारे सर्प अपनी आत्मरक्षाके लिये इस नियमका पालन करते थे। सर्पोंमें कद्रूका पुत्र कालिय नाग भी था। वह अपने विषके घमण्डसे मतवाला हो रहा था। उसने गरुड़को तुच्छ समझा और स्वयंको बलि तो नहीं ही दी, प्रत्युत दूसरे साँप जो गरुड़के लिये बलिके रूपमें लाये जाते, उन्हें भी वह खा जाता। यह देख गरुड़को क्रोध हो गया। उन्होंने कालियको मार डालनेका निश्चय कर लिया। कालियने समझ लिया कि गरुड़ मुझे मारना चाहते हैं। इसलिये वह एक सौ फण फैलाकर उनपर टूट पड़ा। उसने विषैले दाँतोंसे गरुड़को डँस लिया, गरुड़को इससे अत्यधिक क्रोध हुआ। उन्होंने अपने विशाल पंखोंसे उसे घायल कर शक्तिहीन बना दिया। तब कालिय अपने परिवारके सहित वहाँसे भागा और वृन्दावनमें यमुनाजीके कुण्डमें आकर रहने लगा। यमुनाजीका कुण्ड गरुड़के लिये अगम्य था; क्योंकि पहले इसी स्थानपर सौभरिऋषि तपस्या करते थे। एक समय ऋषिके मना करने पर भी गरुड़ने यमुनाके जलसे मत्स्योंके मुखियाको निकाल कर खा लिया था। मुखियाके खा लेनेसे मछलियोंको बड़ा कष्ट हुआ। इस पर सौभरिने गरुड़को यह शाप दिया कि यदि तुम अब यहाँ आकर मत्स्योंको खाओगे तो उसी समय तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। उसी भयसे गरुड़ यहाँ नहीं आते और कालिय नाग सुख पूर्वक तबसे ही यहीं निवास करता आ रहा है।

कालियके विषकी गर्मीसे यमुना-जल सदैव खौलता रहता था। यहाँ तक कि उसके ऊपरसे उड़नेवाले पक्षी भी झुलस कर उसमें गिर जाया करते थे। उसके विषैले जलका स्पर्श करके तथा उसकी छोटी-छोटी बूँदें लेकर जब वायु बाहर आती और तटके घास-पात, वृक्ष, पशु-पक्षी आदि का स्पर्श करती तो वे सब उसी समय झुलस जाते, मर जाते।

इस स्थितिका अवलोकन श्रीकृष्णने किया और उन्होंने निश्चय किया कि कालिय नागके निवास करनेसे ही यमुनाका जल विष पूर्ण हो गया है, जिसका पान कर ग्वाल-बाल गाएँ तथा अन्य जीव भी दिन प्रति दिन मृत्युके घाट उतरते रहते हैं, जिसके विषकी वायु आकाशचारी जीवोंके नाशका कारण बन रही है। अतः इसकी शुद्धि करना अतीव आवश्यक है। इधर अभिमानी कालिय नागको भी शरण देना है, उसे भी कृतार्थ करना है, क्योंकि वह मेरा शरणागत दास है।

तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन,
दुष्टां नदीं च खल संयमनावतारः।
कृष्ण-कदम्बमधिरुह्य ततोऽतितुङ्गः,
मास्फोट्य गाढरशनो न्यपतत् विषोदे॥
(भा. १०।१६।६)

जब भगवान्‌ने देखा कि साँपका विष बड़ा प्रबल और भयङ्कर है तथा उसके कारण मेरे विहार का स्थान यमुना भी दूषित हो गई है, तब भगवान् श्रीकृष्णने अपनी कमरका फेंट कस कर तटके एक बहुत ऊँचे कदम्बके वृक्ष पर चढ़ गये और वहाँसे ताल ठोंक कर विषैले जलमें कूद पड़े।

विषके कारण पहलेसे ही यमुनाका जल खौल रहा था। भगवान् श्रीकृष्णके गिरनेसे उसका जल और भी अधिक उछलने लगा, वह चारों ओर फैलने लगा। भगवान् मत्त-गजराजके समान जल उछालने लगे। उनकी भुजाओंके टक्करसे जलमें बड़ा जोरका शब्द होने लगा। वह शब्द नागने सुना। उसे अपने निवास स्थानका तिरस्कार सह्य नहीं हुआ। वह चिढ़ कर मतवाला-सा हो श्रीकृष्णके सामने आ गया।

तं प्रेक्षणीय सुकुमारघनावदातं,
श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुन्दरास्यम्।
क्रीडन्तम प्रतिभयं कमलोदराङ्घ्रि,
संदश्य मर्मसु रुषाभुजया चछाद॥
(भा १०।१६।६)

उसने देखा कि सामने एक सांवला सलोना बालक है, जिसका वर्षा कालीन मेघके समान अत्यन्त सुन्दर शरीर है। उसमें लगकर आँखें हटनेका नाम नहीं लेतीं। उसके वक्षस्थल पर सुनहरी रेखा—श्रीवत्सका चिह्न है और पीले रङ्गका वस्त्र धारण किये हुए है। बड़े मधुर एवं सुन्दर मुख पर मन्द-मन्द मुसकान अत्यन्त शोभायमान हो रही है। चरण कमल इतने सुन्दर और सुकुमार हैं कि मानो कमलकी गद्दी हो। इतना आकर्षक रूप होने पर भी जब उसने देखा कि बालक तनिक भी न डर कर विषैले जलमें मुझसे खेल रहा है, तब उसका क्रोध बढ़ गया। उसने श्रीकृष्णके मर्म स्थानों में डस कर उन्हें अपने शरीर के बन्धनसे जकड़ लिया।

तं नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्ट-
मालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्ताः।
कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थ कलत्रकामा,
दुःखानुशोकभयमूढधियोनिपेतुः॥
(भा. १०।१६।१०)

भगवान श्रीकृष्ण नाग पाशमें बँध कर निश्चेष्ट हो गये। यह देख कर उनके साथके प्यारे सखा गोप, ग्वाल बड़े ही दुःखी हुए और उसी समय दुःख, पश्चात्ताप और भयसे मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

ऐसा होना स्वाभाविक था। क्योंकि उन्होंने अपना शरीर सुहृद, धन, सम्पत्ति, स्त्री, पुत्र, भोग और सारी संसारकी कामनाएँ भगवानको समर्पित कर रक्खी थी।

गावो वृषा वत्सतर्यः क्रन्दमानाः सुदुःखिताः।
कृष्णे न्यस्तेक्षणा भीतारुदत्य इव तस्थिरे॥
(भा. १०।१६।११)

गाय, बैल, बछिया और बछड़े दुःखसे डकराने लगे। श्रीकृष्णकी ओर उनकी टकटकी बँध गई। वे डर कर इस प्रकार खड़े हो गये कि मानो रो रहे हों।

श्रीकृष्णके दहमें चले जानेके पश्चात् व्रजमें बड़े-बड़े उत्पात होने लगे। भयानकता छा गई। उत्पातोंको देख कर उन्हें श्रीकृष्णकी मृत्युकी आशङ्का होने लगी। नन्दबाबा, नन्दरानी, गोप-ग्वाल सभी कन्हैयाको देखनेकी उत्कट लालसासे घरद्वार छोड़ कर निकल पड़े। पहले तो बलरामको सर्व शक्तिमान् श्रीकृष्णको समझ कर हँसी आ गई, पर वे समय की परिस्थितिको देख चुप रहे, बोले नहीं और सभी के साथ श्रीकृष्णको ढूँढ़ने चले।

अन्तर्ह्रदे भुजगभोगपरीतमारात्,
कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयान्ते ;
गोपांश्च मूढविषण्णान् परितः पशूंश्च,
संक्रन्दतः परमकश्मलमापुरार्ताः ॥
(भा. १०।१६।१९)

उन्होंने दूरसे ही देखा कि कालिय दहमें कालिय नागके शरीरसे बँधे हुए श्रीकृष्ण चेष्टाहीन हो रहे हैं। कुण्डके किनारे पर ग्वाल-बाल अचेत पड़े हैं। गाय, बछड़े, आर्त स्वरसे डकरा रहे हैं। यह सब देख कर वे सब गोप अत्यन्त व्याकुल और अन्तमें मूर्छित हो गये।

गोप्योऽनुरक्तमनसो भगवत्यनन्ते,
तत्सौहृदस्मितविलोकगिरः स्मरन्त्यः ।
ग्रस्तेऽहिनाप्रियतमे भृशदुःखतप्ता,
शून्यं प्रियव्यतिहृतं ददृशुस्त्रिलोकम् ॥
(भा. १०।१६।२०)

श्रीकृष्णमें गोपियोंका कितना प्रेम था यह कहने की बात नहीं, वे तो नित्य निरन्तर भगवान् के सौहार्द, उनकी मधुर मुसकान, प्रेमभरी चितवन तथा मीठी वाणीका ही चिन्तन करती थीं। जब उन प्रेम मयी गोपियोंने देखा कि हमारे प्रियतम श्याम-सुन्दरको काले नागने जकड़ रक्खा है, तब तो उनके हृदयमें बड़ा ही दुःख और बड़ी जलन हुई। उन्हें अपने प्राण वल्लभ जीवन सर्वस्वके बिना तीनों लोक सूनेसे दीखने लगे।

ताः कृष्णमातरमपत्यमनुप्रविष्टां,
तुल्यव्यथाः समनुगृह्यशुचः स्रवन्त्यः ।
तास्ताः व्रजप्रियकथाः कथयन्त्य आसन्,
कृष्णाननेऽर्पितदृशो मृतक प्रतीकाः ॥
(भा. १०।१६।२१)

माता यशोदादि तो अपने लाड़ले लालके पीछे कालिय दहमें कूदने ही जा रही थीं। परन्तु उनके समान उनकी स्नेहमयी गोपियोंने उन्हें रोक लिया। ऐसी बात नहीं थी कि उनके हृदयमें उनसे कम पीड़ा हो; उनके हृदयमें भी वैसी ही पीड़ा थी, वैसा ही शोक था, उनकी आँखोंसे भी आँसुओंकी वैसी ही झड़ी लग रही थी। सबकी आँखें श्रीकृष्णके मुख कमल पर ही लगी हुई थीं। जिनके शरीरमें चेतना थी, वे श्रीकृष्णकी पूतना वध आदि की प्यारी-प्यारी कथाएँ कह कर यशोदाजीको धीरज बँधा रही थीं।

कृष्णप्राणान्निविशतो नन्दादीन् वीक्ष्य तं ह्रदम् ।
प्रत्यषेधत्स भगवान् रामः कृष्णानुभाववित् ॥
(भा. १०।१६।२२)

नन्दबाबा आदि अपने जीवन प्राण श्रीकृष्णको कालियके दहमें घुसा हुआ जान कर स्वयं भी दहमें घुसने लगे। परन्तु श्रीकृष्णका प्रभाव जानने वाले बलरामजीने समझा बुझा कर बल पूर्वक और उनके हृदयोंमें प्रेरणा करके उन्हें रोक लिया।

साँपके शरीरसे बँध जाना तो श्रीकृष्णकी मनुष्यों जैसी एक लीला थी। उन्होंने जब देखा कि व्रजके सभी लोग स्त्री और बच्चे मेरे लिये अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं। तब वे सर्पके बंधनसे बाहर निकल आये। अपना शरीर फुला कर मोटा कर लिया, जिससे साँपका शरीर टूटने लगा। सर्प अपना नाग पाश छोड़ कर अलग खड़ा होकर क्रोध से फुफकारने लगा। उसके मुखसे आगकी लपटें निकलने लगी। साँप श्रीकृष्ण पर फनोंसे वार करने

लगा वह पैंतरा बदलने लगे । धीरे-धीरे कालियका बल क्षीण हो गया । श्रीकृष्ण उसके फनों पर उछल कर सवार हो गये और कला पूर्ण नृत्य करने लगे । जो शिर ऊँचा उठता, उसीको फिर नीचा दबा देते । इस प्रकार उसकी जीवनी शक्ति नष्ट हो गई, मुख और नथुनोंसे खून निकलने लगा । अन्तमें वह बेहोश हो गया । तनिक चेत होने पर फिर प्रहार करता हुआ फुफकार मारने लगा ।

तच्चित्रताण्डवविरुग्णफणातपत्रो,
रक्तं मुखैरुरु वमन् नृपभग्नगात्रः ।
स्मृत्वा चराचर गुरुं पुरुषं पुराणं,
नारायणं तमरणं मनसा जगाम ॥
(भा. १०।१६।३०)

भगवानके इस अद्भुत ताण्डव नृत्यसे कालिय के फणरूप छत्ते भिन्न-भिन्न हो गये, उसका एक-एक अंग चूर हो गया । उसके मुखसे खूनकी उल्टी होने लगी । तब उसे सारे जगतके आदि-शिक्षक पुराण पुरुष भगवान् नारायणकी स्मृति हुई । वह मन-ही-मन भगवान्की शरणमें चला गया ।

अपने पतिकी यह दशा देख कर नाग पत्नियाँ विकल होकर अपने बालकोंको आगे करके पृथ्वी पर लोट गईं और हाथ जोड़ कर उन्होंने समस्त प्राणियोंके एक मात्र स्वामी भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया । भगवान् श्रीकृष्णको शरणागत-वत्सल जान कर अपने अपराधी पतिको छुड़ानेकी इच्छासे उन्होंने उनकी शरण ग्रहण की और भगवानकी स्तुति करने लगी ।

न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिन्,
तवावतारः खलनिग्रहाय ।
रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टे,
र्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ॥
अनुग्रहोऽयं भवतः कृतो हि नो,
दण्डोऽसतां ते खलु कल्मषापहः ।
यद् दन्दशूकत्वममुष्य देहिनः,
क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव सम्मतः ॥
तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं,
निरस्त मानेन च मानदेन ।
धर्मोऽथ वा सर्वजनानुकम्पया,
यतोभवान् तुष्यति सर्वजीवः ॥
(भा. १०।१६।३३ से ३५ तक)

प्रभो आपका यह अवतार ही दुष्टोंको दण्ड देने के लिये हुआ है । इस लिये इस अपराधीको दण्ड देना सर्वथा उचित है । आपकी दृष्टिमें शत्रु और पुत्रका कोई भेद-भाव नहीं है । आप जो किसीको दण्ड देते हैं, वह उसके पापोंका प्रायश्चित कराने और उसका परम कल्याण करनेके लिये ही । आपने हम लोगों पर बड़ा अनुग्रह किया । यह तो आपका कृपा-प्रसाद ही है । क्योंकि आप जो दुष्टोंको दण्ड देते हैं, उससे उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं । इस सर्पके अपराधी होनेमें कोई सन्देह नहीं है । यदि यह अपराधी नहीं होता तो सर्पकी योनि ही इसे क्यों मिलती । इसलिये हम सच्चे हृदयसे आपके इस क्रोधको भी आपका अनुग्रह ही समझती हैं । अवश्य पूर्व जन्ममें इसने स्वयं मान रहित होकर और दूसरोंका सम्मान करते हुए बहुत बड़ी तपस्या की है अथवा सब जीवों पर दया करते हुए इसने कोई बहुत बड़ा धर्म किया है; तभी तो आप इसके ऊपर सन्तुष्ट हुए हैं ।

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ।
भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ॥
(भा. १०।१६।३६)

प्रभो ! हम आपको प्रणाम करती हैं । आप अनन्त एवं अचिन्त्य ऐश्वर्यके नित्य निधि है । आप सबके अन्तःकरणोंमें विराजमान होने पर भी अनन्त हैं । आप समस्त प्राणियोंके और पदार्थोंके आश्रय तथा सब पदार्थोंके रूपमें भी विद्यमान हैं । आप प्रकृतिसे परे स्वयं परमात्मा है ।

नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥
(भा. १०।१६।४५)

आप शुद्ध सत्वमय वसुदेवके पुत्र हैं तथा वासुदेव संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इस प्रकार चतुर्व्यूहके रूपमें आप भक्तों तथा यादवोंके स्वामी हैं । श्रीकृष्ण हम आपको नमस्कार करती हैं ।

अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः ।
क्षन्तुमर्हसि शान्तात्मन् मूढस्य त्वामजानतः ॥
अनुगृह्णीष्व भगवन् प्राणांस्त्यजति पन्नगः ।
स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥
विधेहि ते किङ्करीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया ।
यच्छ्रद्धयानुतिष्ठन् वै मुच्यते सर्वतोभयात् ॥
(भा. १०।१६।५१,५२,५३)

हे प्रभो ! हमारा यह पति भी आपकी सन्तान और प्रजा है । इसने अनजानमें अपराध किया है । एक बार तो इसे अवश्य ही क्षमा कर देना चाहिये । क्योंकि आप शान्त रूप हैं । यह मूढ़ है । प्रभो ! देखिये, कृपा कीजिये अब यह सर्प मरनेवाला ही है । साधु पुरुष सदासे ही हम अबलाओं पर दया करते आये हैं । अतः आप अवश्य ही कृपा करके हमारे प्राणनाथको दे दीजिये । हम आपकी दासी हैं । हमें आप आज्ञा दीजिये, आपकी क्या सेवा करें, क्योंकि जो श्रद्धाके साथ आपकी आज्ञाओंका पालन करता है, आपकी सेवा करता है, वह सब प्रकारके भयसे छूट जाता है ।

भगवान्‌के चरणोंके प्रहारसे कालियनागके फण छिन्न-भिन्न हो गये थे । वह बेसुध हो रहा था । जब नाग पत्नियोंने इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति की तो श्रीकृष्णने दया करके उसे छोड़ दिया ।

प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम् ।
कृच्छ्रात् समुच्छ्वसन् दीनः कृष्णं प्राह कृताञ्जलिः ॥
वयं खलाः सहोत्पत्त्याः तामसा दीर्घमन्यवः ।
स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥
त्वयासृष्टमिदं विश्वं धातर्गुणविसर्जनम् ।
नानास्वभाववीर्याजोयोनिबीजाशयाकृति ॥
वयं च तत्र भगवन् सर्पा जात्युरुमन्यवः ।
कथं त्यजाम त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥
भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः ।
अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद् विधेहि नः ॥
(भा. १०।१६।५५ से ५६)

धीरे-धीरे कालिय नागकी इन्द्रियों और प्राणोंमें कुछ चेतना आ गई । वह बड़ी कठिनतासे श्वास लेने लगा और थोड़ी ही देरके बाद बड़ी दीनतासे हाथ जोड़ कर भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोला ।

प्रभो ! हम जन्मसे ही बड़े दुष्ट तमोगुणी और बहुत दिनोंके बाद भी बदला लेनेवाले बड़े क्रोधी जीव

हैं। हमारा ऐसा स्वभाव ही बन गया है। आप जानते ही हैं कि सभी जीवोंके लिये अपना स्वभाव छोड़ देना बहुत कठिन है। इसी स्वभावके कारण संसारके लोग नानाप्रकारके दुराग्रहोंमें फँस जाते हैं। आपने ही इस संसारकी रचना की है। इसलिये यह कहनेमें कोई संकोच नहीं कि आपने ही गुणोंके भेदसे इस जगतमें नाना प्रकारके स्वभाव, वीर्य, बल, योनि, बीज, चित्त और आकारोंका निर्माण किया है। भगवन्! आप ही की सृष्टिमें हम सर्प भी हैं। हम जन्मसे ही बड़े क्रोधी होते हैं। हम इस मायाके चक्करमें स्वयं मोहित हो रहे हैं। फिर अपने प्रयत्न से मायाका त्याग कैसे करें। आप सर्वज्ञ और सम्पूर्ण जगतके स्वामी हैं। आप ही हमारे स्वभाव और इस मायाके भी कारण हैं। अब आप अपनी इच्छासे जैसा ठीक समझें कृपा कीजिये या दण्ड दीजिये। हमें इस विषयमें कुछ भी कहना नहीं है।

कालियके द्वारा प्रणत होकर इस प्रकार प्रार्थना करने पर भगवान्‌ने कहा—सर्प! तुझे मैंने अभय किया। अब तुझे यहाँ नहीं रहना चाहिये। तू शीघ्र ही यहाँसे अपनेपरिवार के साथ समुद्रके पास रमणक दीपमें चला जा। क्योंकि इस यमुना नदीके जलका उपयोग गौएँ-गोप-ग्वाल सभी करेंगे। यह भी स्मरण रख तुझे मेरे चरण चिन्होंके अंकित होनेके कारण गरुड़ भी अब नहीं खायगा, न किसी प्रकार का कष्ट देगा। मैंने तुझे शरणागत दासोंकी श्रेणीमें ले लिया है।

भगवान्‌की आज्ञा पाकर प्रस्थान करते हुए नागने अपने परिवारके साथ भगवान्‌की पूजा की, बड़े प्रेम-से परिक्रमा की, वन्दना की और प्रसन्न चित्त होकर चल पड़ा। कालियके चले जानेके पश्चात् यमुनाका जल विषहीन अमृतमय हो गया।

—वागरोदी कृष्णचन्द्र शास्त्री साहित्य-रत्न

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षा

कुबुद्धि छाड़िया कर श्रवण कीर्तन।
अचिरात् पावे तवे कृष्ण प्रेम - धन॥
नीच - जाति नहे कृष्ण भजने अयोग्य।
सत्कुल - विप्र नहे भजनेर योग्य॥
जेई भजे, सेई बड़ अभक्त हीन छार।
कृष्ण भजने नहीं जाति कुल आदि विचार॥
दीनेर अधिक दया करेन भगवान।
कुलीन, पण्डित धनीर बड़ अभिमान॥
भजनेर मध्ये श्रेष्ठ नव विध भक्ति।
कृष्ण प्रेम' 'कृष्ण' दिते धरे महाशक्ति॥
तार मध्ये सर्वश्रेष्ठ नाम संकीर्तन।
निरपराधे नाम लैले पाय प्रेमधन॥

—श्रीचैतन्य चरितामृत

श्रीश्रील आचार्यदेवका भाषण

[श्रीमदनमोहन गाड़ीय मठके नव-निर्मित श्रीमन्दिरके द्वारोद्घाटन के समय उनके द्वारा दिये गये भाषणका सारांश ।]

श्रीभगवन्मंदिरका द्वारोद्घाटन करनेके लिये रासविहारीने मुझे आदेश दिया है । इसी बीच निर्मला भक्ति द्वारा श्रीरासविहारी मन्दिरमें विराजमान हो गये हैं । इस अवसर पर मुझे शास्त्रकी वाणी स्मरण हो आयी है—

"वनं तु सात्विको वासो ग्रामो राजस उच्यते ।
तामसं द्यूतसदनं मन्निकेतनन्तु निर्गुणम् ॥"

वनमें वास करना सात्विकवास कहलाता है, ग्राम में निवास करना राजस वास है, द्यूतसदनमें निवास करना तामस वास है और भगवानका निवास स्थल—श्रीमन्दिर आदिके निकट वास करना निर्गुण वास है ।

एक दिन किसी व्यक्तिने मुझसे पूछा—'संन्यासी लोग तो वन जंगलोंमें रहते हैं; आप संन्यासी होकर शहरमें क्यों रहते हैं ?' मैंने उत्तर दिया—'मैं जिस चुचुड़ा शहरमें वास करता हूँ, वहाँ तो वन-जंगलके शेर-बाघ और भालुओंसे भी अधिक हिंस्र जन्तु निवास करते हैं ।' संन्यासीगण भगवानके समीप रहते हैं । भगवान तो सात्त्विक स्थानोंमें भी नहीं रहते हैं; वे केवल निर्गुण स्थानमें ही विराजते हैं । 'वनन्तु सात्त्विको वासो'—वनमें निवास करना तो सात्त्विक वास है । केवल निर्गुण वस्तुमें, निर्गुण स्थानमें ही भगवानका आवास है । साधु भी भगवानके समीप निर्गुण स्थानमें ही वास करते हैं । सात्त्विक, राजस और तामस—ये तीनों गुण मायिक हैं । परन्तु भगवानका निकेतन, भगवानका निवास स्थल—श्रीमन्दिर किसी भी गुणके अन्तर्गत नहीं है । वह निर्गुण स्थान है । वहाँ सगुण क्रिया दृष्टिगोचर होनेपर भी वह सगुण क्षेत्र नहीं है । उदाहरणस्वरूप, एक रेलगाड़ीके एक ही प्रथम श्रेणीके डिब्बेमें एक सज्जन व्यक्ति यात्रा कर रहे हैं, उनके समीप ही वैसे ही भेष-भूषामें सज्जित एक पाकेटमार भी सुअवसरकी ताक लगाये बैठा है । बाह्यतः दोनों व्यक्ति एक जैसे दीखने पर भी दोनोंमें आकाश-पातालका अन्तर है । भगवानका निवास स्थल और साधारण स्थान एक जैसे दीख पड़ने पर भी दोनोंमें बहुत अन्तर है । जो व्यक्ति चोर और साधुका तारतम्य समझता है, वह निरपेक्ष और महान है । यह स्थान निर्गुण है । यहाँ भगवान विराजमान हैं । बाह्य दर्शनसे हम इसे ईंट-पत्थर और (Mosaic) आदिका बना हुआ देखते हैं; यह हमारा व्यक्तिगत दोष है । वस्तुका कोई दोष नहीं है, दोष हमारे दर्शन में है । हमारा ऐसा दर्शन हमें अधोपतनके गर्त्त में गिरा देगा । इसीलिये भगवानने निर्गुण स्थानको प्रकटित किया है ।

निर्गुण भी एक गुण है । इसका दूसरा नाम विशुद्ध सत्त्व है । इसे ऊपरसे देख कर साधारण लोग सात्त्विक क्षेत्र कहेंगे । भगवान भी निर्गुण हैं। निर्गुण कहनेसे कुछ लोग निराकार समझ बैठते हैं। परन्तु यह उनकी भ्रान्त धारणा है । साधारणतः जहाँ पर कोई पार्थिव आकार (Applied) नहीं होता या दिखाई नहीं पड़ता, उसे निराकार कहते हैं। गणित शास्त्रमें जहाँ गिनती करनेमें असमर्थ होते हैं, वहाँ (Infinity) (अनन्त) कहते हैं अर्थात् वहाँ अभाव 'पूर्ण' हुआ मानते हैं । परन्तु यह (wrong conception) भ्रान्त-धारणा है। मन्दिरकी निर्गुणता भी उसी प्रकार है अर्थात् उसमें पार्थिव गुण (Applied) नहीं हो सकता; क्योंकि मन्दिर पार्थिव जगतकी कोई वस्तु नहीं है । निर्गुण चित्तके बिना कोई भी भगवानका मन्दिर निर्माण नहीं कर सकता ।

आपलोग सभी यहाँ आवेंगे और अपने-अपने हृदयकी अभिव्यक्ति भगवानके श्रीचरणकमलोंमें निवेदन करेंगे ।

कल्याणपुरमें दूसरे भाषणसे

आज मैं यहाँ पर इतने लोगोंको देख कर बड़ा ही आनन्दका अनुभव कर रहा हूँ । सावधान ! धर्म का यह भाव कभी भी नष्ट न होने पावे । आजकल भारतमें और विशेष कर बंगालमें शिक्षाकी जो शोचनीय अवस्था लक्ष्य कर रहा हूँ, उससे यह शिक्षा और कितने दिनों तक रहेगी—यह विवेच्य है । आजकल स्कूल और कॉलेजके छात्रोंके सामने धर्मका आचरण करना विपज्जनक समस्या हो गयी है । परन्तु यहाँ तो इसके विपरीत भाव लक्ष्य कर रहा हूँ । यहाँ इस धर्म सभामें अनेकों छात्र सम्मिलित हुए हैं और श्रद्धापूर्वक धर्मकी बातें सुन रहे हैं। धर्म क्या है ? और क्या सुननेसे हमारा कल्याण होगा, यह विचारणीय प्रश्न है । आज नित्यानन्द प्रभुकी अविर्भाव तिथि है । बीरभूमके एकचाका (बंगाल) ग्राममें आविर्भूत होकर उन्होंने समग्र देशको धर्मकी शिक्षा दी थी । राधा-कृष्ण कौन हैं, इसे जगतको बतलानेके लिये नित्यानन्द प्रभुका आविर्भाव हुआ था । श्रीचैतन्यमहाप्रभु द्वारा और श्रीनित्यानन्द प्रभुद्वारा प्रचारित धर्मका श्रवण करेंगे, उसे समझनेकी चेष्टा करेंगे और जान-सुन कर अपना जीवन सार्थक करके इसका प्रचार करेंगे । कलियुगके प्रभावसे यह धर्म प्रायः लुप्त होने जा रहा है । इसीलिये आप लोगोंके इस इलाकेके प्रसिद्ध कविराज रासबिहारी प्रभुने निर्मला भक्तिकी शिक्षाके लिये इस केन्द्रकी स्थापना की है । निर्मला भक्तिके निकट एम. ए. आदि अत्यन्त हेय और निम्नकोटि की शिक्षाएँ हैं । आधुनिक शिक्षा मनुष्यको निम्न-गामी करती है । इसका प्रधान कारण यह है कि इस शिक्षाको ग्रहण करने पर ईश्वर विश्वास समाप्त हो जाता है । आजके शिक्षित यह कहते हैं—'ईश्वर माननेसे क्या लाभ है ? क्या ईश्वर हमें भोजन देगा ?'

कुछ समय पूर्व एक धर्म-वक्ताका प्रादुर्भाव हुआ था । उक्त धर्म प्रचारक जब अमेरिकासे लौट कर भारत आये, तब यहाँ पर उन्हें धर्म-वक्ताके रूपमें बड़ी प्रतिष्ठा मिली । उनकी बातें अत्यन्त तुच्छ कोटि की हैं । उन्होंने तुच्छ कर्म-काण्डकी बातोंका

प्रचार किया है। गोस्वामी महाराज ऐसी शिक्षाके आचार्य नहीं हैं। उक्त धर्म-वक्ताका मत यह है कि जो हमें भोजन और वस्त्र देगा, वही हमारे लिये सबसे बड़ा ईश्वर है। आजकल शिक्षाका मूलमन्त्र है—'खाओ, पीओ और मौज करो। इससे अधिक कुछ और चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है।' आजके कर्णधार एवं समाजनायक इसके अतिरिक्त कुछ अधिक चिन्ता करने भी नहीं देंगे। आजका शिक्षा विभाग यह सिखलाता है कि जो हमें नौकरी देते हैं, वे भी हमारे ईश्वर हैं। परन्तु यह शिक्षा विभाग भगवानके क्रिया-विलास आदिकी शिक्षा नहीं देता। आज देशके तथाकथित लीडरगण धर्मको समाप्त कर देनेके लिये कटिबद्ध हैं। परन्तु हमारा निश्चयपूर्ण कहना है—ये पाषण्डगण हमारे इस देशसे कभी भी धर्म-प्रवृत्तिको नष्ट नहीं कर सकते। गोस्वामी महाराजने श्रीमन्महाप्रभुकी इस वाणीका समग्र विश्वमें प्रचार कर हलचल मचा दी थी। उन्होंने लन्दनमें यह प्रमाणित कर दिया है कि 'ईश्वर हैं और कृष्ण हैं।'

आज आप लोग बहुत अधिक संख्यामें यहाँ पर एकत्रित हैं। आप लोग अपने लड़कोंकी पुस्तकें पढ़ कर देखेंगे, उन पुस्तकोंमें आपको कहीं भी ईश्वरकी कोई बात नहीं मिलेगी। उनमें श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण आदि भगवदवतारोंके सम्बन्धमें ऐसा उल्लेख किया गया है, जिससे वे साधारण मनुष्यकी भाँति प्रतीत होते हैं। आपलोग ऐतिहासिकोंको महापाषण्ड और नास्तिक समझेंगे। हम उन्हें अत्यन्त हेय दृष्टिसे देखते हैं। बड़े दुःखकी बात है कि विश्वविद्यालयोंसे इन महापाषण्डियोंकी पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। आप सब लोग मिल कर एक साथ यह अवाज बुलन्द करें कि—'हम ईश्वर विरोधी कोई भी बात सुननेके लिये प्रस्तुत नहीं हैं। पहले भगवानकी बातें कहिये, पीछे दूसरी बातें करिये।' प्रतिज्ञा कीजिये—हम अपने प्रियतम पुत्र और प्रियतमा भार्या तककी बातें नहीं सुनेंगे, उनका संग नहीं करेंगे, यदि वे ईश्वर विमुख हैं।

जिस प्रकार शिक्षाके लिये विद्यालयकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार धर्मकी प्राप्तिके लिये गुरु-पदाश्रयकी आवश्यकता है। भगवान—एक पेड़के लटकते हुए फल नहीं हैं, वे लाल वस्त्र और लाठी धारण कर अण्डा-गोस्त-सर्वस्व चट कर जानेवाले नामधारी संन्यासी भी नहीं हैं अथवा वे हमारे आर्डर सप्लाई करनेवाले अर्दली भी नहीं हैं। जो-सो भगवान नहीं हैं। जिसको-तिसको भगवान नहीं कहा जा सकता है। जो यह कहे कि "मैं ईश्वर हूँ या हम ईश्वर हैं अथवा सभी ईश्वर हैं" उनको अपने समाजसे बहिष्कृत कर दीजिये। संसारमें जितने भी मत हैं, वे सभी भगवानकी प्राप्तिके एक-एक पथ हैं'—यह आसुरिक चिन्ताश्रोत है। यदि बंगालको—भारतको किसीने नीचे गिराया है, तो ऐसी-ऐसी उक्तियोंने ही उसे नीचे ढकेल दिया है। इन आसुरिक चिन्ताओंको—धर्मध्वजियोंके तथाकथित समन्वयवाद को स्वीकार नहीं करेंगे। हम कर्म करते समय अपनी बुद्धिका जौहर दिखायेंगे, परन्तु धर्मके समय अपनी तटस्थता दिखलायेंगे, 'हम कुछ नहीं समझते' ऐसा कहेंगे—ये कैसी बातें हैं? आजकल सर्वत्र ही ऐसा सुना जाता है—'विश्वास ही फलदायक है।' यह बात सत्य है; परन्तु विश्वास किसे कहते हैं—

इसे सर्व-प्रथम समझना होगा । गोस्वामी महाराज वैकुण्ठसे निश्चय ही प्रचुर आशीर्वाद कर रहे होंगे। वे वहीं से इस निर्गुण स्थानको देख रहे होंगे। यह खाने-पीनेका कोई अड्डाखाना नहीं है । आज ढेकी और मूसल भी भगवान बन गये हैं, जो दरिद्र भोजन तक नहीं पाता, उसे भी नारायण बनाया जा रहा है; यदि ईश्वरका विचार ऐसा ही रहा तो कोई भी भगवानको क्यों मानेगा ? (क्रमशः)

—संग्राहक श्रीवृन्दावनबिहारी ब्रह्मचारी बी० ई०

श्रीपिछलदा गौड़ीय मठमें स्नान-यात्रा महोत्सव

३१ ज्येष्ठ, सोमवार पूर्णिमाको श्रीगौड़ीय मठ पिछलदा (मेदिनीपुर) में श्रीश्रीजगन्नाथदेवकी स्नान-यात्राके अवसर पर मठका वार्षिक महोत्सव त्रिदण्डि-स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डि महाराज एवं श्रीरमानाथ व्रजवासीकी संचालकतामें सुसम्पन्न हुआ है। इस महोत्सवके उपलक्षमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्-भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराजने मठ-प्रांगणमें आयोजित कई एक विराट धर्म-सभाओंमें आधुनिक अपसम्प्रदायोंके कुसिद्धान्तोंका खण्डन करते हुए श्रीचैतन्यमहाप्रभु द्वारा आचरित शुद्धाभक्तिकी प्रतिष्ठा करते हुए ओजस्वी भाषण दिये हैं । ३१ जूनको वहाँ उपस्थित लगभग ३००० श्रद्धालु लोगोंको श्रीश्री गुरु-गौराङ्ग - राधाविनोदबिहारीजीका महाप्रसाद वितरण किया गया है।

श्रीपाद त्रिदण्डी महाराजने स्नान-यात्रासे पूर्व चौबीस परगनाके डाइमण्डहारबर एवं मेदिनीपुर जिलेके विभिन्न स्थानोंमें शुद्धाभक्तिका प्रचार किया है।

—निजस्व संवाददाता

बावरी गोपिकाका प्रेमोन्माद

अटक गयो मन मोर अलि री !
इक गोपलला की छवि पर ।
कोटिक काम चन्द की शोभा,
लुटत फिरे वा छवि पर ।
नयन पलक मम टरे न पलहु,
निरखत भूल गई अपनोंपन ।
रोकत रूके न लोचन तारक,
बेरि बेरि चितवत वा चितवन ।
मिटत न जिय की आस,
सखी री ! नयना रहत पियासे ।
जो छोड़न चाहूँ उत लखिवो,
पलमें होत जीय प्राण उदासे ।
लोचन में बिठला लूँ या,
उर में रूप अनूठ उतारूँ ।
निशि - वासर अपने ढिग रख,
पुनि क्षण - क्षण माँहि निहारूँ ।
कर - मुरली कटि पीत काछनी,
पग पैंजनी उर माल पुहुप की ।
अङ्ग - अङ्ग में कुसुम आभरण,
चन्द्र बदन पर भँवरे अलकी ।
दृग कोरन ते चितवत इतउत,
नयन बावरे खिंच खिंच जावे ।
चलत देख भ्रू - भङ्ग किशोर वय,
युवतिन प्राण पीर चली आवे ।
कहँ लो कहूँ नन्द सुत शोभा,
'सत्य' अली कछु कहत न पाऊँ ।
प्रतिपल रूप दूसरो लागत,
भ्रम सो चकित खड़ी रह जाऊँ ।
मोहित मन जो भयो नेकहू,
तो पुनि लगत न नीको किछहुँ ।
श्याम रङ्ग, श्याम, करत मन,
दीसत श्याम श्याम चहुदिशहुँ ।

—सत्यपाल ब्रह्मचारी एम. ए. उतराद्ध

प्रचार-प्रसंग

आसाम और बंगालके विभिन्न स्थानोंमें श्रीलआचार्यदेव

परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवने आसाम प्रदेशीय भक्तोंके विशेष आह्वान पर कतिपय संन्यासियों एवं ब्रह्मचारियोंके साथ गत २८ मई १९६५ को श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठसे प्रस्थान किया। श्री आचार्यदेव त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त पर्यटक महाराजको साथ लेकर एयरोप्लेन द्वारा कुचबिहार और वहाँसे मोटर बस द्वारा श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठमें पधारे तथा श्रीवृन्दावनदास ब्रह्मचारी, श्रीहरिहर ब्रह्मचारी, श्रीवृषभानु ब्रह्मचारी, श्रीनित्यकृष्ण ब्रह्मचारी आदिके साथ ट्रेन द्वारा श्रीगोलोकगंजमें उपस्थित हुए। वहाँ पर पन्द्रह दिनोंतक अपने उपदेशोंसे वहाँकी धार्मिक जनताको शुद्धाभक्तिकी ओर प्रवृत्त और उत्साहित कर वहाँसे श्रीनरोत्तम गौड़ीय मठ, चड़ाईखोला (आसाम) पधारे वहाँ भी कुछ दिनों तक हरिकथा कीर्तन कर वहाँसे श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ होते हुए धुबड़ी पधारे। धुबड़ी आसामका एक प्रधान नगर है। यहाँ पर दो दिनों तक ठहरकर विभिन्न स्थानोंमें श्रीचैतन्य वाणीका प्रचार कर वहाँसे बंगाईगाँव पधारे। वहाँ पर उन्होंने श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीयमठके अध्यक्ष त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त परिव्राजक महाराजके विशेष आग्रहसे उक्त मठ-प्राङ्गणमें आयोजित धर्मसभामें श्रीचैतन्यवाणीका कीर्तन किया। तदनन्तर त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराजकी परिचालकतामें एक प्रचार पार्टीको रखकर वहाँसे माथाभांगा (कुचबिहार) के भक्तोंके आग्रहसे माथाभांगा पधारे और वहाँ पर श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा परिचालित श्रीगौड़ीय सेवाश्रम के प्रांगणमे आयोजित दो विराट धर्म सभाओंमें दो दिन सनातन-धर्म एवं श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रगटित शुद्धभक्तिके सम्बन्धमें बड़ा ही विचारपूर्ण तथा हृदयस्पर्शी भाषण दिया। यहाँ पर श्रीवृन्दावन दास ब्रह्मचारीजीने भी सुन्दररूपमें भाषण दिया। तदनन्तर वे शिलीगुड़ीमें कुछ दिनोंतक हरिकथाका प्रचार कर श्रीनवद्वीप धाममें शुभागमन किये हैं।

आसामके विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिधर्मका प्रचार

परमाराध्यतम श्रीश्रीलआचार्यदेवके माथाभाङ्गा (कुचबिहार) शुभ-विजय करने पर उनके निर्देशानुसार त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त पर्यटक महाराज, श्रीहरिहर ब्रह्मचारी, श्रीभक्त्याङ्ग ब्रिरेणु दासाधिकारी और श्रीआश्रितवत्सल दासाधिकारी आदिके साथ ग्वालपाड़ाके पलाशगुड़ी मंगलाग्राम, उत्तर काजलगाँव और भेलुबाड़ी आदि स्थानोंमें शुद्ध भक्तिका प्रचार बड़े उत्साहपूर्वक कर रहे हैं। गत ३० जूनको श्रीरथ-यात्राके दिन भेलुबाड़ीके विराट धर्मसभामें स्वामीजीने बड़ी ही ओजस्वनी भाषामें सनातन-धर्मके सम्बन्धमें भाषण दिया। उनके भाषणको सुनकर जनताने उनके भाषणकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस प्रचार कार्यमें आसाम प्रदेशीय भक्त-प्रवर श्रीरमानाथ दासाधिकरीका योगदान बड़ा ही प्रशंसनीय है।